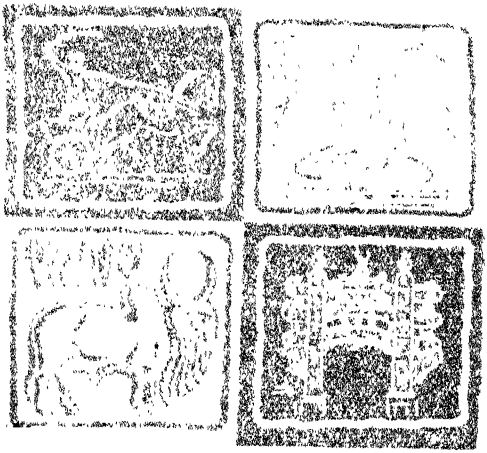
स्वदेश परिचय-माला

भारतीय चित्रकला की कहानी



लेखक

भगवतशरण उपाध्याय

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली-६

द्वितीय आवृत्ति
मई १९५६

चित्रकार
के० सी० आर्यन

मूल्य
एक रुपया चार आना

मुद्रक
हिन्दी प्रिन्टिंग प्रेस
क्वीन्स रोड, दिल्ली

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट, दिल्ली—६

भारतीय चित्रकला की कहानी

भारतीय चित्रों की कहानी उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय मूरतों की। यह कहानी आज से करीब पाँच हज़ार साल पहले शुरू होती है, और अगर हम बनैले शिकारियों की तस्वीरों का ज़िक्र करें तो दस हज़ार साल पहले से भी पहले। पर मूरतों और चित्रों के इतिहास में दोनों के विकास के तरीकों में कुछ अन्तर भी रहा है। मूरतें हमें शुरू में ही अचरज के नमूनों के रूप में मिलती हैं, पर चित्र मूरतों के-से गज़ब के शुरू में नहीं मिलते। हालांकि अपने देश की पहली मूरतों से पहले के चित्र हज़ारों क्या दसों हज़ार बरस ज्यादा पुराने हैं।

इसी तरह मूरतों का आरम्भ भरापूरा होकर भी बारहवीं सदी ईस्वी के बाद उनका बनना बन्द-सा हो जाता है। पर बारहवीं सदी के बाद चित्रों की एक से एक बढ़कर शैलियाँ चल पड़ती हैं, जो लगातार अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी तक काफी मात्रा में जीवित रहती हैं। और बीसवीं सदी में जहाँ मूर्तिकला सदियों से ग़ायब रहकर बड़े हल्के तौर से हमारे कलाकारों को अपनी ओर खींचती

है, चित्रकला अपने वर्तमान युग के विविध प्रयोगों में फिर से जी उठती है।

भारतीय चित्रकला की कहानी समझने के लिए हमें उसे नीचे लिखे बारह युगों में बाँटना होगा—१. बर्बर-युग; २. अजन्ता से पहले; ३. अजन्ता-गुप्त-काल; ४. पूर्व-मध्य-युग; ५. उत्तर मध्य-युग; ६. राजपूत-युग; ७. मुग़ल शैली से पहले; ८. मुग़ल शैली; ९. पहाड़ी-शैली; १०. भारतीय शैली का विस्तार और अनुकरण; ११. राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन-युग; १२. वर्तमान-युग।

: १ :

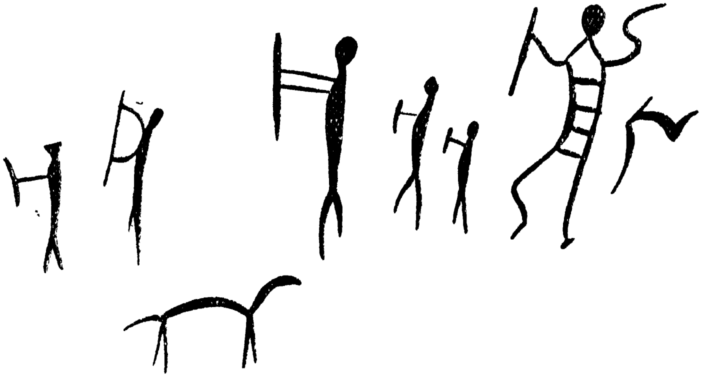
बर्बर-युग

बर्बर-युग आज से हज़ारों, दसियों हज़ार साल पहले का वह युग है, जब आदमी अपनी आदिम हालत में था, जब अभी उसे सभ्यता की किरण नहीं मिली थी। वह तब पेड़ों पर, गुफाओं में, गड्ढों में रहता था। नंगा ही घूमता था या अधिक से अधिक पत्तों, पेड़ों की छाल या मारे हुए जानवरों की खाल से अपना तन ढकता था। न उसके पास रहने को गाँव थे, न मकान, न खाने को उगाया हुआ अन्न था, न पहनने को वस्त्र। जीने के साधन उसके पास बहुत कम थे। उन साधनों में सबसे महत्व का साधन शिकार था। शिकार करके ही वह अपना पेट पालता था।

पर यह शिकार कुछ आसान न था। बड़े-छोटे खूंखार जानवरों का शिकार और वह भी मामूली हथियार से। तब हाथी से कई गुने बड़े जानवर थे, जो आज खत्म हो गए हैं। ऐसे ही तलवार के से दाढ़ों वाले शेर थे जिनकी शक्ल आज बिल्कुल बदल गई है। अभी धातु जानी हुई न थी। इससे हथियार पत्थर के ही थे, तेज़ पत्थर के, जिन्हें रगड़-कर लकड़ी में ठोककर भाले का फल बना लिया जाता था।

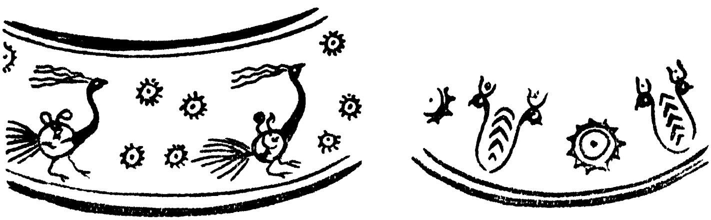
शिकार करना इतना कठिन था कि आदमी अपनी सफलता के लिये केवल अपनी ताकत के करतब पर ही निर्भर नहीं करता था। वह उसके लिये कई प्रकार के जादू-टोने भी करता था। इस प्रकार का एक टोटका अपनी पहाड़ी खोह की दीवार पर रेखा में शिकार किये जाने वाले जानवर का चित्र बनाकर ,उसे तीरों और भालों से बेध देना था। यह शिकारियों को शिकार के शरीर को, उसके अंग-प्रत्यंग को इतमीनान से समझने का मौका तो देता ही था, साथ ही शिकारियों के विश्वास के अनुसार उन्हें मारने का टोटका भी तैयार कर देता था। अपने भालों से मारने के पहले ही शिकारी शिकार को चित्र में मार डालते थे। इन रेखाचित्रों को जब-तब फुरसत में वे रंगों से भी सँवारते थे।

इस प्रकार के अनेक चित्र आज से पचीस-पचीस हज़ार साल पुराने, उनसे भी पुराने और नये स्पेन, फ्रांस और अपने देश की खोहों-कन्दराओं में बने मिले हैं। स्पेन देश के अल्टामाइरा और दक्खिनी फ्रान्स में साँड-भैंसों के शिकार के अनुपम चित्र मिलते हैं। ऐसे ही अपने देश के भी मध्य-भारत और मिर्ज़ापुर की गुफाओं में उस प्राचीन काल के बनैले शिकारियों के शिकार के चित्र हैं, जो हमारे देश की चित्रकला के सबसे पुराने नमूने हैं।



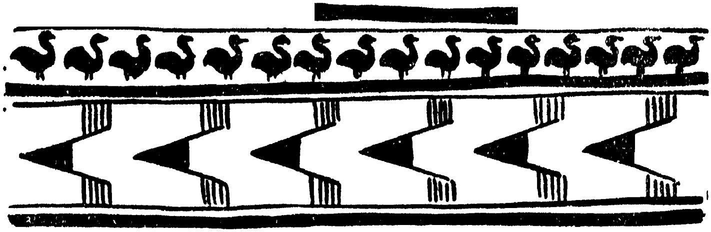
प्राचीन काल के शिकारियों के शिकार के चित्र

इसके बाद चित्रकारी के नमूने हमें अपने देश में आज से करीब पांच हज़ार साल पहले के मिलते हैं। ये सिन्धु घाटी की सभ्यता के हैं, जो मोहनजोदड़ो, हड़प्पा और नाल में मिले हैं। मोहनजोदड़ो सिन्ध में है, हड़प्पा पाकिस्तान के मॅटगुमरी जिले में और नाल बलूचिस्तान में। नमूने कागज़ पर नहीं हैं; क्योंकि आदमी ने अभी कागज़ का इस्तेमाल नहीं सीखा था। फिर भी खूबसूरती का प्रेमी



बर्तनों पर चित्रकारी के नमूने

होने के कारण वह अपने बर्तनों, मटकों को चटक रंगों से रँगता और उन पर कई रंगों से साँपों, चटाई की बुनाई और दूसरे प्रकार की शक्लें या जानवरों की तस्वीरें बनाता



चटाई की रंगीन बुनाई

था। तब के अनेक नमूने हमारे और पाकिस्तान के अजायबघरों में रखे हुए हैं।

बाद के चित्र पत्थर, लकड़ी, हड्डी, हाथीदाँत, चमड़ा, कपड़ा, भोजपत्र, ताड़पत्र, कागज़ आदि पर बने। अगले युगों के चित्रों के बयान इन्हीं पर बनी तस्वीरों से सम्बन्ध रखते हैं।

: २ :

अजन्ता से पहले

अजन्ता के चित्र का युग भारतीय इतिहास का एक सुनहरा युग है, जो गुप्त-काल यानी चौथी-पाँचवीं सदी ईस्वी से शुरू होता है। इसका यह मतलब नहीं है कि उसके पहले चित्र कम बनते थे। स्वयं अजन्ता में गुप्तकाल से पहले के चित्र हैं। पर कला की नज़र से वे गुप्तकाल या उसके पीछे के युगों के मुकाबिले के नहीं हैं। जो हैं, उनको गुप्तकाल की चित्रकला की खूबसूरती की पिछली मंज़िलों के ही रूप में देखा जाता है।

एक बात पहले इस सिलसिले में बता देनी मुनासिब होगी। बर्बर-युग की चित्रकला का सिलसिला जारी न रह सका। कम से कम तब के नमूने हमारे पास नहीं हैं। वैदिक-काल के चित्रों का हमें पता नहीं है। शायद वे ऐसी चीज़ों पर बनते थे जो नष्ट हो गये हैं, पर बनते ज़रूर थे, क्योंकि वैदिक साहित्य में उनका कई बार उल्लेख हुआ है। ऐसे ही रामायण, महाभारत, बौद्धों और जैनों की पुरानी पोथियों, जातकों आदि में चितेरों, चित्रों और उनके बनाने की विधियों का हवाला मिलता है।

भारतीय चित्रकला के बनैले जीवन के सबसे पुराने

नमूने हमें सरगुजा के पास जोगीमारा और सीताबोंगा की गुफाओं में मिलते हैं। शायद ये ईसा से दो सौ वर्ष पहले के हैं। ये भित्तिचित्र हैं—दीवारों पर बने। पहले के सारे चित्र दीवारों पर ही मिलते हैं। इनके बाद के भित्तिचित्र अजन्ता में हैं, जिनमें सबसे प्राचीन शुंग और कुशाणकाल के हैं।

शुंग-काल का आरम्भ मौर्यों के बाद ईसा से करीब १८५ साल पहले, आज से कोई दो हज़ार साल से काफी पहले हुआ। तब के कुछ चित्र अजन्ता की गुफाओं में बने मिलते हैं। अजन्ता की गुफाएँ तो और पहले, शायद अशोक मौर्य के भी समय काटी जाने लगी थीं, पर उनमें चित्र पीछे बने थे। उन चित्रों में सबसे पुराने इसी शुंग-काल के हैं, ईसा से करीब सौ बरस पहले के। इनमें बनी पगड़ियों की शक्ल शुंग-काल की सामने गाँठदार पगड़ियों की-सी है।

ये चित्र अजन्ता की नवीं-दसवीं गुफाओं में हैं। इनकी प्राचीनता में कुछ विद्वानों ने सन्देह भी किया है, पर इसमें सन्देह नहीं कि इनका समय गुप्त-काल के आरम्भ में यानी चौथी सदी ईस्वी से पहले है, शुंग और कुशाण-काल में, ईसा से सौ साल पहले से दो सौ साल बाद तक। इस काल के बाद ही भारत में एक नई राष्ट्रीयता की लहर दौड़ जाती है। नाग-वाकाटक राजा, विशेषकर नाग कुशाणों

को देश से बाहर निकाल देते हैं, वैसे ही जैसे आगे चलकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शकों को निकाला। देश में करीब तीन सौ बरसों तक विदेशी ग्रीकों, ईरानियों, शकों और कुशाणों का राज्य रहा था, उसका अन्त नागों ने किया। नये हिन्दू साम्राज्य का विस्तार गुप्त-सम्राटों ने किया। तभी से, यानी ईसा की चौथी सदी से, अजन्ता की अचरज-भरी चित्रकला का आरम्भ होता है।

: ३ :

अजन्ता गुप्त-काल

अजन्ता के चित्रों की बात हम तीन युगों में बाँट सकते हैं—गुप्त-युग, वाकाटक-युग और चालुक्य-युग। साधारण तौर से गुप्तों का युग भारतीय इतिहास का सुनहरा युग कहलाता है। इस काल उस वंश के समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य आदि राजाओं की विजयों से साम्राज्य की लम्बाई-चौड़ाई बढ़ी और मालवा और गुजरात-काठियावाड़ के अधिकार में आ जाने से व्यापार के ज़रिये पच्छिमी देशों का धन यहाँ बरसने लगा। कला की तब विशेष उन्नति हुई। तभी संस्कृत के महाकवि कालिदास हुए। पर इसका मतलब यह नहीं है कि गुप्तकाल के बाद के बने चित्र उस युग के चित्रों से घटिया हैं। गुप्तों से चालुक्यों तक के युगों के चित्र एक से एक बढ़कर हैं। यहाँ उनका विभाजन तो हम केवल अपने अध्ययन की सुविधा के लिये कर रहे हैं।

गुप्तों का युग तीसरी-चौथी सदी से छठी सदी तक है। छठी सदी में गुप्त सम्राटों का साम्राज्य हूणों के हमलों से टूट गया, पर उनके चित्रों के चमत्कार का असर करीब सौ साल और देश की चित्रकला पर बना रहा। वाकाटक

मध्यभारत में नाग राजाओं के बाद या प्रायः उनके साथ-साथ ही उठे। उस प्रदेश पर वाकाटकों का राज्य तभी था, जब उत्तर में गुप्त सम्राट् अपने यश का विस्तार कर रहे थे। उनका सबसे महान् राजा प्रवरसेन चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का समकालीन था। इस तरह गुप्त और वाकाटक युग करीब-करीब एक ही युग की ओर इशारा करते हैं। पर चालुक्यों का युग उनके बाद शुरू होता है। उनका सबसे शक्तिमान् और प्रसिद्ध राजा पुलकेशिन् द्वितीय था। वह कन्नौज के हर्षवर्धन का समकालीन था, और सोलहवीं सदी के शुरू में उसने हर्ष को हराया भी था। जैसे हर्ष उत्तरापथ (भारत के उत्तरी प्रदेश) का स्वामी कहलाता था, वैसे ही पुलकेशिन् दक्षिणापथ (भारत के दक्षिणी प्रदेश) का स्वामी कहलाता था। हर्ष के खिलाफ़ अपना बल बढ़ाने के लिये उसने ईरान के शक्तिमान् राजा खुसरू से सन्धि की। उसके जबाव में ईरानी सम्राट् ने भी पुलकेशिन् के दरबार में अपना दूत भेजा। उस दूत का चित्र अजन्ता की एक गुफा में खिचा मिलता है। चालुक्यों का यश सबसे अधिक ईसा की सातवीं सदी में बढ़ा, जो अजन्ता के सबसे सुन्दर चित्रों का युग है। पर वह यश चालुक्यों की शक्ति के बाद तक बना रहा, जैसे अजन्ता के चित्र भी बाद तक कायम रहे।



ईरानी दूत का चित्र

अजन्ता के भित्तिचित्र (दीवार पर बनी तस्वीरें) संसार के सुन्दरतम चित्रों में अपना स्थान रखते हैं। उन्हें देखकर संसार के बड़े से बड़े जानकारों ने दाँतों तले उँगली दबा ली है। इस देश में तो वैसा कुछ नहीं है। संसार के दूसरे देशों में भी अजन्ता के चित्रों की बराबरी के चित्र न बन सके। अजन्ता हमारे पूर्वजों की अक्षय कीर्ति है, हमारे इतिहास और कला का गौरव, हमारे देश की राष्ट्रीय चित्रशाला है।

अजन्ता की गुफाओं का पता लगाने की कहानी भी बड़ी मज़ेदार है। हैदराबाद में अंग्रेज़ी सेना पड़ी हुई थी। एक दिन उनका एक अफ़सर शिकार खेलने निकला और सूअर का पीछा करता दूर चला गया। शिकार तो ओझल हो गया, पर उसके बदले अफ़सर ने वहाँ जो दृश्य देखे, वे जितने ही उसके लिये अचरज-भरे थे, उतने ही दुनिया के लिये। जंगल की झुरमुट से जो वह पहाड़ के नीचे निकला तो वह देखता क्या है कि सामने सीढ़ियों पर एक से एक बरामदे और हाल पहाड़ की ठोस चट्टानी दीवार को काटकर बने हुए हैं। वह जो ऊपर चढ़कर गुफाओं में पहुँचा तो जैसे तिलिस्मी देश में पहुँच गया। बरामदों, उनके द्वारों, खम्भों से ही वह हैरत में आ गया था, अब जो वह उनके भवनों में घुसा तो उसने चित्रों की हँसती-जागती, रोती-सोती, शान्त-क्रूर-करुण, एक नई दुनिया देखी। लगा, जैसे वह सपने के देश में विचरण कर रहा हो। एक से एक अभिराम चित्र उसकी आँखों के सामने उठ आये। वह भागा और उसने सेना के कमान्डर से अपना अचरज कह डाला।

फिर तो भाग-दौड़ शुरू हुई। कुछ तस्वीरें नक़ल करके लन्दन भेजी गईं। दुनिया के चितेरों ने, कला के जानकारों ने उन्हें देखा और असल की ख़ूबसूरती को सोचकर हैरत में आ गए। अजन्ता की भी नींद टूटी। हज़ार साल घने

जंगलों में जो वह दबी पड़ी रही थी, एकाएक वह संसार के कलापारखियों और कलावन्तों का केन्द्र बन गई। सन् १८२४ से आज तक अजन्ता कलावन्तों का तीर्थक्षेत्र बनी रही है, बनी रहेगी। उसके अभिराम चित्र सदा हमारा मस्तक दुनिया में ऊँचा करते रहेंगे।

स्थान भी वह खूब है। जलगाँव के पास हैदराबाद राज्य में पच्छिमी घाट के सह्याद्रि पहाड़ों में अर्द्धचन्द्राकार कटी अजन्ता की गुफाएँ वैसे भी, बाहर से भी, मन को मोह लेती हैं। उनके ऊँचे सिलसिले के नीचे उनके पग धोती-सी नदी बहती है। उन तक पहुँचने की राह दोनों ओर पारिजात के पेड़ों से महमह महकती रहती है। और जो गुफाओं के भीतर है, उसकी बात क्या कही जाय !

बस्तियों से दूर, जंगल-पहाड़ों से छिपे अंतर में इन्सान के बाजुओं की ताकत से ये गुफाएँ खुदी हैं। बरामदे और हाल, ध्यान-समाधि के लिये छोटी कोठरियाँ, चैत्य-मन्दिर और खंभे, असंख्य बने हैं और उन पर सोते-जागते चित्रों की बात कोई क्या कहे, जैसे उनका गिनना कठिन है, वैसे ही उनकी खबसूरती का अन्दाज़ देना मुश्किल है। गुफायें और चित्र बौद्धों के हैं। उस दूर के छिपे वातावरण में रमने और ध्यान करने के लिये भिक्षुओं ने इन्हें खोदा, बनाया। गुफाओं की संख्या २६ है। इनमें कुछ पुरानी हैं, कुछ पीछे

की। वैसे ही इनमें बने चित्र भी युगों के हिसाब से पहले-पीछे के हैं। गुफाओं का खुदना तो अशोक के समय ही, यानी आज से कोई दो हज़ार दो सौ साल पहले ही शुरू हो गया था, पर उनमें चित्र पीछे बने। पहले शायद शुंग और कुषाण काल (यानी ईसा से सौ साल पहले से दो सौ साल बाद तक) में फिर गुप्त, वाकाटक और चालुक्य युगों में।

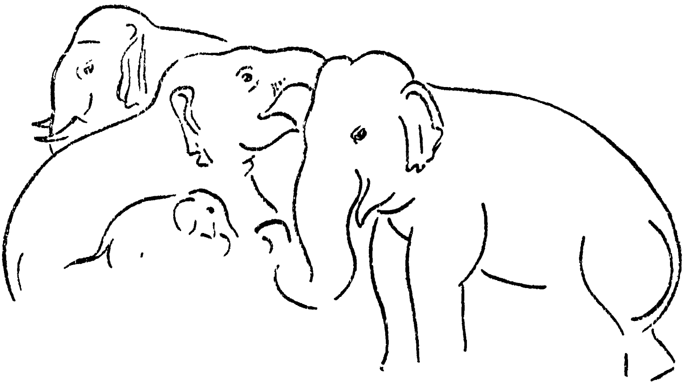
गुफा-चित्रों की बनावट खास तौर से होती थी। गुफा खुद जाने के बाद दीवारों को बराबर कर लिया जाता था, फिर उसे टीपकर उस पर गोबर मिले पत्थर के पाउडर का लेप चढ़ा देते थे। बाद में चूने का हल्का पलस्तर चढ़ा, हद बनाकर, रेखा से आकृतियाँ बना ली जाती थीं। फिर उन पर आवश्यकता के अनुसार रंग भर दिये जाते थे।

अजन्ता की गुफाओं में बड़ी चित्र-सम्पदा है। देवता से दैत्य तक बड़ी खूबी से खींचे गए हैं। और उनके बीच के आधे देवता, गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, यक्ष, अप्सरायें, राजा, रंक, सभासद्, साधारण नर-नारी, नागरिक, ग्रामीण, भिक्षु, गृहस्थ, जानवर, पक्षी, वृक्ष, लता, तालाब, सारा चराचर अद्भुत सजीवता से दीवारों पर उतार दिया गया हैं। कहीं शिथिलता का नाम नहीं, जीवन गतिमान् है, चित्र बोलते, चलते-फिरते-से हैं। जीवन मौजें मारता है। दृश्यों

की क्रूर और करुण कहानी, शान्ति और क्रोध, मोह और त्याग सभी सहसा उन दीवारों पर सँवर आये हैं। जातकों की कहानियाँ, बुद्ध का महाभिनिष्क्रमण, माता यशोधरा का पुत्र राहुल को बुद्ध के लिये भिक्षा-दान, नन्द का बार-बार अपनी हाल की ब्याही पत्नी की ओर भागने का प्रयास, बार-बार उसका संघ में रोक लिया जाना, पद्मपाणि बुद्ध का अनुपम रूप, राजा-रानियों का सुरा-पान, सभी गज़ब की खूबी से रूपायित हुए हैं। सह-वेदना अजन्ता चित्राचार्यों का सबसे बड़ा गुण है, जिससे क्या मानव, क्या जानवर, क्या पेड़-पौधे सभी एक-दूसरे से जैसे प्रेम-भाव से जुड़े हुए हैं। बन्दरों की चुहलबाज़ी सजीव हो उठती है। हाथी कमल


यशोधरा और राहुल

भरे सरोवर में हथिनियों के साथ कलोल करता है, कमल-नाल तोड़-तोड़ उन्हें देता है, फिर अद्भुत मानवी तुष्टि के



साथ अपनी सूँड हथिनी की पीठ पर प्रेमपूर्वक रख देता है, रस बरस पड़ता है। अजन्ता चित्र-जगत् का अनुपम महाकाव्य है, जिसमें असाधारण मात्रा में नवरस बरस पड़े हैं।

अजन्ता की अपनी शैली है जो उसके यथार्थ चित्रण के बावजूद दूसरे चित्रों में पहचानी जा सकती है। इस शैली की विशेष पहचान उनके नेत्रों और उँगलियों की आकृति है। आँखें लम्बी, कमलाकार लम्बी और उँगलियाँ पल्लव-टहनियों की-सी लचीली मुद्रा में हैं। इसी से अजन्ता की आकृतियाँ यथार्थ के साथ ही परम्परा की भी हैं। आकृतियों की सुकुमारता और दमखम अपना राज़ लिये हुए हैं, जो

अन्यत्र नहीं मिलते ।



अजन्ता की एक कमनीय मूर्ति

प्रधान दृश्यों के अतिरिक्त खंभों पर चाँदनी और खाली जगहों में जिन अलंकार-आकृतियों का चित्रण हुआ है, वह भी प्रधान से कुछ कम सत्ता या आकर्षण नहीं रखते । हवा में उड़ते गन्धर्व, विद्याधर, विद्याधरियाँ और अप्सरायें, खंभों की नर्तकियाँ-प्रसाधिकायें अद्भुत भावभंगी के साथ चितेरे की कूँची के डंठल पर खिल उठी हैं । अजन्ता में अभिप्रायों की संख्या अनन्त है । तरह-तरह की डिज़ाइनें बेइन्तहा तादाद में वहाँ मिलती हैं ।

ईस्वी पाँचवीं सदी वा गुप्तकाल के चित्र दूसरे युग के

चित्रों के साथ ही पहली, सोलहवीं और विशेषकर सत्रहवीं गुफा में हैं। बुद्ध पर कामदेव का आक्रमण, नागराज और अवलोकितेश्वर के चित्र पहली गुफा में हैं। गौतम-बुद्ध का घर छोड़ना, राहुल के साथ यशोधरा की निद्रा, मरती राजकुमारी के दृश्य सोलहवीं में हैं। सत्रहवीं के चित्र बेजोड़ हैं। माँ-बेटे के चित्र उसी में हैं। बुद्ध कपिलवस्तु लौटे हैं, वहाँ पिता के नगर में भी घर-घर भिक्षा माँग रहे हैं। यशो-धरा के घर भी जा पहुँचते हैं और सभी घरों की भाँति भिक्षा-पात्र वहाँ भी आगे कर देते हैं। यशोधरा राहुल को लिये खड़ी है। वह बुद्ध को बुद्ध के रूप में नहीं, केवल पति के रूप में जानती है और जब स्वयं पति उसके सामने भीख माँग रहा है तो क्यों न वह अपना सर्वस्व दे डाले। वह उसे सर्वस्व दे ही डालती है। वह सर्वस्व उसका राहुल है, उस माँ का सर्वस्व जिसे उसका पति छोड़ चुका है। उसका एकमात्र सहाय वही पुत्र राहुल है, पर उसे भी वह दे डालती है। उसी दान का चित्र कलाकार ने इस गुफा में ग़ज़ब की ख़ूबी से खींचा है। देखने वालों का हिया उसे देख रो उठता है। आगे की कहानी है कि माँ ने राहुल से कहा—'बेटे, पिता से अपनी दाय (विरासत) माँग।' बुद्ध ने चेले से कहा—'आनन्द, राहुल को प्रव्रज्या दो।' सचमुच बुद्ध के पास सिवा संन्यास के और क्या था !

: ४ :

पूर्व-मध्य-युग

अजन्ता की पहली गुफा के कुछ चित्र सातवीं सदी के हैं, पर दूसरी में तो उनकी भरमार है। समय बदल जाने पर भी चित्रों की सुकुमारता या सौंदर्य में कोई खास फर्क नहीं पड़ा है। फिर भी पूर्व-मध्य-काल की भारतीय चित्रकला के सुन्दर और कुछ दूसरे नमूने अजन्ता के बाहर हैं---बाघ, बादामी, सित्तनवासल और एलोरा की गुफाओं में। पूर्व-मध्य-युग के चित्र साधारणतः ६०० ईस्वी और ६०० ईस्वी के बीच के हैं।

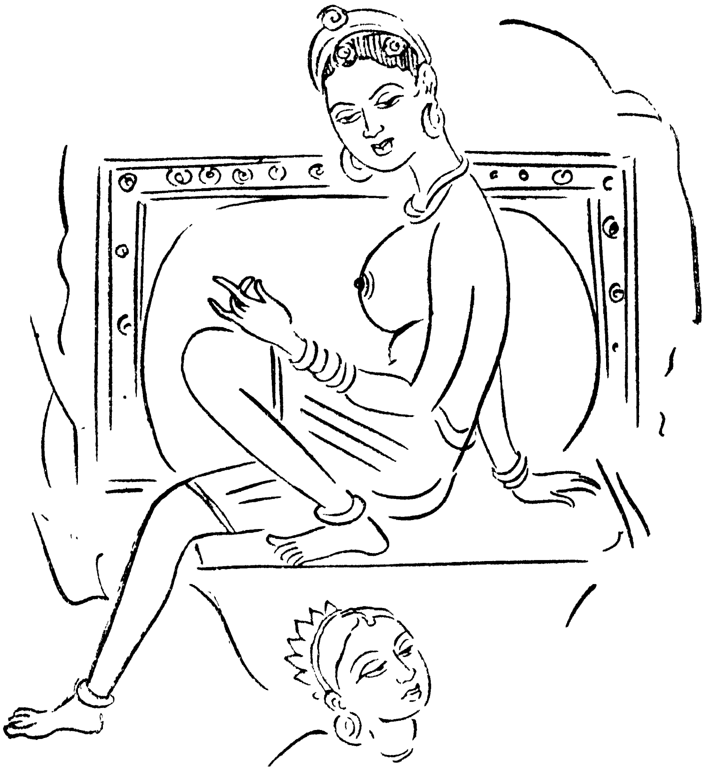
बाघ—बाघ की गुफाएँ मध्य भारत (ग्वालियर राज्य, मालवा) में बाघ नाम की नदी के किनारे हैं। इनका पता अजन्ता की गुफाओं के बाद चला, बीसवीं सदी में। हैं ये गुप्तकाल से कुछ ही बाद की। गुफाओं की संख्या नौ है, पर वे प्रायः टूटी-फूटी हालत में हैं। चित्र चौथी और पाँचवीं गुफाओं में हैं, सजीव और गतिमान्, अजन्ता के चित्रों से मिलते-जुलते। एक चित्र में रोती नारी का बड़ा करुण चित्रण हुआ है। हाथियों और घोड़ों का चित्रण बाघ में असाधारण



बाघ की एक कलाकृति

सुन्दर हुआ है। बाघ के चित्रों की शैली अजन्ता से बहुत मिलती है।

बादामी—वातापी या बादामी चालुक्य राजाओं की राजधानी थी। यहीं के राजा पुलकेशिन् द्वितीय ने हर्षवर्धन को हराया था। अपनी उस जीत का हाल उसने ऐहोल के अभिलेख में लिखवाया। बादामी ऐहोल के पास ही है। बादामी में चार गुफाएँ हैं। इन गुफा-मन्दिरों में भित्तिचित्र हैं जो काफी सुन्दर हैं और बाघ के चित्रों से बेहतर हालत में हैं। खंभे के सहारे प्रतीक्षा में खड़ी नारी का चित्र अभि-



बादामी गुफामन्दिर का एक भित्तिचित्र

राम है। वैसे वहां के अनेक चित्रों की जानकारों ने तारीफ की है।

सित्तनवासल—दक्खिन में तंजोर के पास पुदुकोट्टा में पल्लवों की बनवायी गुफाओं में दीवारों पर चित्र बने हैं।



प्रकृति-चित्रण (सित्तनवासल)

इन दरी-गृहों (गुफा-मन्दिरों) और चित्रों का निर्माण सातवीं सदी ईस्वी के पूर्वार्द्ध में महेन्द्रवर्मन प्रथम और उसके बेटे नरसिंहवर्मन ने कराया था। इनकी कुछ नारी-मूर्तियाँ बड़ी कमनीय और आकर्षक हैं। सित्तनवासल के चित्रों की शैली भी अजन्ता की ही है। इनमें भी बड़ी गति और जीवन है। सरोवर, कमल-वन, पुष्प-चयन, नृत्य, अलंकार आदि के कुछ नमूने वहाँ बड़े सुघड़ हैं।

एलोरा— एलोरा के गुफा-मन्दिर संख्या में उनतीस हैं।

अजन्ता से ये करीब पचहत्तर मील और औरंगाबाद से दौलताबाद (यादवों की देवगिरि) के पास सोलह मील पर है। यहाँ हिन्दुओं और जैनियों के मन्दिर हैं और अधिकतर उनमें मूरतें कटी हुई हैं, पर कैलास, इन्द्रसभा आदि कुछ गुफाओं में सुन्दरचित्र भी बने हैं। शायद अन्य सभी गुफाओं में भी चित्र थे जो अब मिट गये हैं। बचे हुए चित्र अनुमान से



एलोरा की चित्र-शैली

प्रायः आठवीं सदी के हैं। अच्छे होते हुए भी इनमें और

अजन्ता के चित्रों में बड़ा अन्तर है। ये उनके सामने घटिया किस्म के हैं। वास्तव में एलोरा का महत्व उसके चित्रों में नहीं मूरतों में है, जैसे अच्छी मूरतें होती हुई भी अजन्ता का महत्व उसके चित्रों में है। एलोरा के कैलास-मन्दिर के कुछ चित्र यौन और शृंगारिक हैं।

: ५ :

उत्तर-मध्य-युग

यह युग मामूली तौर से ६०० ई० और १२०० ई० के बीच माना जाता है, पर इसकी निचली सीमा कुछ बाद तक चली जाती है। इस युग में धीरे-धीरे भित्ति-चित्रों का ह्रास और अभाव होने लगता है। इस काल के अन्तिम सालों में छोटे चित्र तालपत्रों की पोथियों पर भी बनने लगते हैं। चित्रों की सुन्दरता भी अब प्रशंसनीय नहीं रह जाती। सुरुचि और आकृति की रुचिरता भी पहले जैसी नहीं रह पाती।

इस काल के कुछ चित्र एलोरा के गुफा-मन्दिरों में भी मिलते हैं, इनमें से कुछ धारा के परमार राजा भोज के भतीजे उदयादित्य के बनवाये हैं। इनका समय ग्यारहवीं सदी का उत्तरार्ध है। इस काल में पोथियों के पत्रों पर चित्रण शुरू हो गया था। हम अब उनका जिक्र करेंगे। इनका विशेष प्रचार पूर्वी भारत और पश्चिमी भारत में था।

पूर्वी शैली—पूर्वी शैली बंगाल की शैली है, बंगाल और बिहार की है। ये प्रदेश पाल शासन में थे, इससे इस

शैली का नाम पाल-शैली भी है। इस शैली के भीतर तिब्बत श्रौर नेपाल की पोथियों के चित्र भी श्राते हैं, विशेषकर नेपाल की पोथियों के, क्योंकि तिब्बत में उनकी जगह ध्वजा-चित्रण की प्रथा थी जो चीनी चित्रण की चेरी थी, यद्यपि उसके विषय भारतीय बौद्ध-धर्म के थे। इनका समय लग-भग दसवीं श्रौर तेरहवीं सदी के बीच में है।

पोथियों के हाशियों श्रौर ऊपर-नीचे की पट्टियों पर चित्र बने रहते हैं। पाल शैली के चित्र श्रधिकतर महायान



पूर्वी शैली की एक कलाकृति

संप्रदाय की बौद्ध पोथियों पर हैं। ये सुन्दर ताड़ के पत्तों पर लिखी हुई हैं। चित्र बुद्ध श्रौर बौद्ध-धर्म के देवी-देवताश्रों

के हैं। पूर्वी शैली पर अजन्ता का ख़ास प्रभाव है। साथ ही इनमें स्वतंत्र छन्द और गतिमानता की कमी है, अंकन की परम्परा में जकड़े होने के कारण लगता है, ये चित्र हिल नहीं पाते। नाक इनमें विशेष लम्बी होती है और परली आँख का कुछ अंश दीखता रहता है, चेहरा एकतरफ़ा होता है। पाल शैली की ये पोथियाँ देश-विदेश के अजायब-घरों में सुरक्षित हैं।

पच्छिमी शैली—पच्छिमी शैली पच्छिमी भारत, गुजरात और दक्खिनी-पच्छिमी राजस्थान में पाई गई है। इसे 'जैन शैली' भी इसलिए कहते हैं क्योंकि जैन धर्म का इन प्रदेशों पर गहरा प्रभाव था और इस शैली के चित्र श्वेतां-बर-जैन पोथियों पर अधिक मिलते हैं। इस ढंग के चित्रों की पहचान गरुड़ की-सी आगे निकली हुई नाक, दूसरी आँख का दीखता हुआ एक भाग, छोटी ठुड्डी, आम की फांक-सी दूर तक फैले कानोंवाली आंख, ऐंठी उँगलियां, पिचका पेट,



आम की फांक-सी लम्बी आंखें!


पच्छिमी शैली में नारी

जकड़ी आकृति आदि हैं। इनमें रंगों की विविधता कम होती है। लाल, पीले रंगों का प्रयोग अधिक होता है। ये चित्र चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में कागज पर भी बनने लगे। धीरे-धीरे यह शैली पच्छिम से बढ़कर पूरब की ओर भी फैल गई, इसका काल-परिमाण भी तब विस्तृत हो गया। इसका एक रूप काश्मीर में भी चला जो काश्मीर शैली के नाम से विख्यात हुआ।

: ६ :

राजपूत-युग

पिछला युग ह्रास का युग रहा था। उसके बाद पन्द्रहवीं सदी में चित्रकला के क्षेत्र में एक नयी प्रेरणा, नयी स्फूर्ति आई। इस काल से कुछ पहले ही रागों का संबन्ध चित्रों से हो चुका था और एक अंश में रागमाला का निरूपण होने लगा था, कृष्णलीला और रीतिकाव्यों से सम्बन्ध रखने वाले चित्र भी बनने लगे थे। इस काल में जिस प्रसिद्ध नई चित्रशैली का आरम्भ हुआ वह 'राजस्थानी कलम' कहलाती है। राजस्थानी शैली का विशेष विकास सोलहवीं-सत्रहवीं सदी में हुआ।

जहाँ तक चित्रों के विषय का सम्बन्ध है, राजस्थानी और उसके शीघ्र पहले के पच्छिमी-शैली के चित्रों में समानता है। दोनों के विषय अधिकतर रागमाला, रीति-शृंगार, ऋतु और कृष्ण-चरित्र हैं। दोनों में विशेष अन्तर ये हैं। जैन या पच्छिमी शैली के चित्र अधिकतर ग्रंथों या इकहरे कागज़ पर हैं और राजस्थानी शैली के कई परत जमाये कागज़ (वसलियों) पर हैं। पहली शैली में दूसरी आँख का

भी एक भाग दीखता है, दूसरी ‘ा नहीं। दूसरी शैली में रंग अनेक और अधिक चटख हो जाते हैं।



राजस्थानी कलम द्वारा चित्रित कृष्णलीला

राजस्थानी शैली के चित्रों का आरम्भ गुजरात में हुआ जान पड़ता है। पच्छिमी भारत की गुजराती परम्परा

चित्रों के क्षेत्र में प्रसिद्ध थी, जो धीरे-धीरे मेवाड़ के कलावन्तों पर हावी हुई। वैसे राजस्थानी कलम का विकास



राजस्थानी वा मुगल शैली का सम्मिश्रण

मुगल कलम के साथ-साथ भी हुआ। दोनों एक-दूसरे से समुचित प्रभावित हुए। राजस्थानी शैली का दूसरा नाम राजपूत शैली है क्योंकि इसका विकास राजपूत राजाओं के दरबार में हुआ। तब उत्तर भारत में मुसलमानों से भिन्न



राजसत्ता राजपूतों के हाथ में ही थी, जिससे वह काल 'राजपूत युग' भी कहलाता है।

सोलहवीं सदी के राजस्थानी चित्र जैन-ग्रंथों पर भी दिखाई पड़ते हैं, और अगली सदी में इसी शैली का अधिकाधिक उपयोग होने लगता है। और बातों में तो इस काल में भी यह कलम पहले जैसी ही है, पर आँखें मछली की तरह कटावदार हो गई हैं।



सत्रहवीं सदी में राजस्थानी चित्रों का एक केन्द्र बुन्देले रज-वाड़ों में बना और वहाँ भी रागमाला

और कृष्णलीला के चित्र बनने लगे। पर निश्चय इनकी



चित्रकारिता कमज़ोर है, और इनका उल्लेख राजस्थानी सुन्दर चित्रों में नहीं किया जा सकता।

अठारहवीं सदी तक राजस्थानी शैली पूरे तौर से खिल आई थी। अब भी इसमें अलंकारिकता की कमी नहीं है, और उसके विषय भी अब अपना विशिष्ट चमत्कार रखने लगे हैं। रागमाला, कृष्णचरित्र, बारहमासा इनके प्रिय विषय होते हैं। इस काल में ग्रंथों में भी इस शैली का भरपूर उपयोग हुआ है। इस राजस्थानी कला के केन्द्र हैं उदय-

पुर, नाथद्वारा, बूँदी, जोधपुर, जयपुर, विशेषकर जयपुर।



बूँदी की चित्रशैली

धीरे-धीरे इस शैली का विस्तार दक्खिन भारत में तंजौर,

रामेश्वरम् तक हो गया। दक्खिन और मैसूर में भी इसकी



नाथद्वारा शैली में श्रीकृष्ण का चित्र

शाखें लगीं और इसे पर्याप्त लोकप्रियता भी प्राप्त हुई।



यहाँ राजस्थानी की ही एक शैली वसौली कलम का उल्लेख कर देना मुनासिब होगा। वसौली जम्मू के पास है। सत्रहवीं सदी में उसका विकास वहाँ के मध्यप्रदेशीय राजघराने ने किया। इस देश के कलापारखियों ने इस शैली का काफ़ी आदर किया है। इस अंकन के प्रिय विषय रामायण, महाभारत, गीतगोविंद आदि ग्रंथों के प्रसंग, रागमाला और नायिका-भेद हैं। रंग इनमें तेज होते हैं, जमीन सपाट होती है, आँखें बड़ी-बड़ी मछली की-सी और ललाट पीछे को हटता हुआ चित्रित होता है। चित्रों पर टाकरी या देवनागरी में लिखावट होती है। इसका उत्कर्षकाल १८वीं सदी का मध्य है।

: ७ :

मुग़ल-शैली से पहले

मुग़ल शैली के चित्रों की बात शुरू करने से पहले उसकी पृष्ठभूमि के बारे में कुछ जान लेना ज़रूरी है। मुग़लों के हिन्दुस्तान जीतने और अपनी नई कलम तैयार करने के पहले, जैसा हम देख चुके हैं, भारत अपनी चित्र-शैलियों में काफ़ी समृद्ध था। पूरबी, पच्छिमी (जैन), और अपनी विविध शाखाओं-उपशाखाओं के साथ राजस्थान की शैलियाँ देश में फैली हुई थीं। इनकी अपनी भावभंगी थी, रंगों का अपना तरीका और अन्दाज़ था, विषय और उद्देश्य थे। उस चित्रकारी में यद्यपि अजन्ता की खूबी न थी पर अपने तरीके पर वह काफ़ी समुन्नत थी, काफ़ी प्रौढ़।

मुग़ल जो हिन्दुस्तान आये तो अपने साथ बाहर की एक शैली लाए। वे स्वयं एक विकसित प्रसिद्ध कलम के वारिस थे। वह कलम ईरानी थी। ईरान सदियों से मध्य एशिया का सांस्कृतिक नेतृत्व करता आ रहा था। उसके चित्रों की शैली आसाधारण प्रौढ़ता प्राप्त कर चुकी थी। उस पर कुछ इस्लाम का प्रभाव था, कुछ अपर भारतीय

बौद्ध चित्रशैली का और विशेषतः चीनी शैली का। सातवीं सदी ईसापूर्व से ही उसकी अपनी कला असोरी कला से प्रभावित रही थी, जिसने ईसापूर्व तीसरी सदी में अशोक की मूर्तिकला को भी प्रभावित किया था। उसकी परम्परा छठी सदी ईस्वी तक तो किसी न किसी रूप में सीधी कायम रही थी। चीनी कला ने भी उस पर अपना गहरा असर डाला था। चीनी कला का, विशेषकर उसकी चित्रलिपि का, प्रभाव प्रायः सारे मध्य एशिया की चित्रकला पर पड़ा था और पड़ौसी होने के कारण ईरान पर तो ख़ास था। पर यह प्रभाव निश्चय सांस्कृतिक था। फिर जब चंगेज़ख़ाँ और क़ुबलेखाँ ने ईरान को जीतकर उस पर अपना राजनीतिक शासन भी स्थापित किया, तब तो ईरान पर चीनी मंगोल-कलम का जादू और गहरा हो गया। ईरान-कलम में विविध प्रकार से चीनी असर मिल गया।

मुग़ल-वंश, परम्परा और संस्कृति दोनों बातों में चीन और ईरान की सम्मिलित सांस्कृतिक दाय का वारिस था। भारत में मुगलिया-तैमूरिया ख़ानदान की सल्तनत कायम करने वाला बाबर माँ की ओर से मंगोली-चीनी चंगेज़ का और पिता की ओर से ईरानी संस्कृति के तुर्क तैमूर का वंशज था। तैमूर चाहे जिस ख़ूनी प्रवृत्ति का रहा हो, उसके सीर-आमू के फ़रग़ना में ईरानी केसर फूलती थी।

फिरदौसी के 'शाहनामा' की कितनी ही घटनायें आमू दरिया के ही किनारे पर घटी थीं। फ़रग़ना की सारी संस्कृति ईरानी थी। वस्तुतः तैमूर के समरकन्द में तीन कला-संस्कृतियों का संगम था—ईरानी, चीनी और अपर भारतीय का।

ईरानी-कलम को प्रौढ़ बनाने में तैमूरिया ख़ानदान के वंशधरों का बड़ा हाथ था। ईरान का सबसे बड़ा चितेरा बिहज़ाद तैमूर के सुसंस्कृत बेटे शाहरुख की संरक्षता में बढ़ा था। उसकी राजधानी हेरात थी और इसी से हेरात मध्य और पच्छिमी एशिया का सबसे बड़ा चित्र-केन्द्र था। हेराती-कलम चित्रकला के इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान रखती है। उस कलम को चोटी तक पहुँचाने वाला बिहज़ाद ही था, जिसके आका के मरने पर सफ़वीं खान्दान का पहला ईरानी शाह उसे तबरेज़ ले गया और तब से तबरेज़ भी तस्वीरों के केन्द्र में अग्रणी हुआ। ईरान की चित्रकला का तीसरा केन्द्र शीराज़ था।

मुगल जब हिन्दुस्तान आए, तब उनके पास इसी सम्पदा की विरासत थी। बाबर ग़ज़ब का सुन्दर लिखने वाला था—साहित्य भी, अक्षर भी और प्रकृति भी। आदमी और पक्षी का तो वह बड़ा ही सजीव चित्रण करता था। हुमायूँ उसी की तरह कला का पुजारी था। बाबर के दर-बार में चितेरों का होना तो इतना प्रसिद्ध नहीं है, पर

हुमायूँ उनका संरक्षक था। जब वह शेरशाह से भागकर ईरान में साल भर ठहरा, तब उसे ईरानी चित्रकारों को नज़दीक से जानने का काफी मौका मिला। कुछ मशहूर चितेरों को वह अपने साथ हिन्दुस्तान भी लाया। इनमें शीराज़ का ख्वाजा अब्दुस्समद और तबरेज़ का मीर सैयदअली उल्लेखनीय हैं। उनके ब्रुश का ही वह जादू था, जिसने हमारे देश में वह कलम लगाई, जिसे मुग़ल-कलम कहते हैं, जैसी पहले न कभी ईरान ने देखी थी, न हिन्दुस्तान ने, जो सफ़ाई और सुकुमारता की प्रतीक बन गई।

: ८ :

मुग़ल शैली

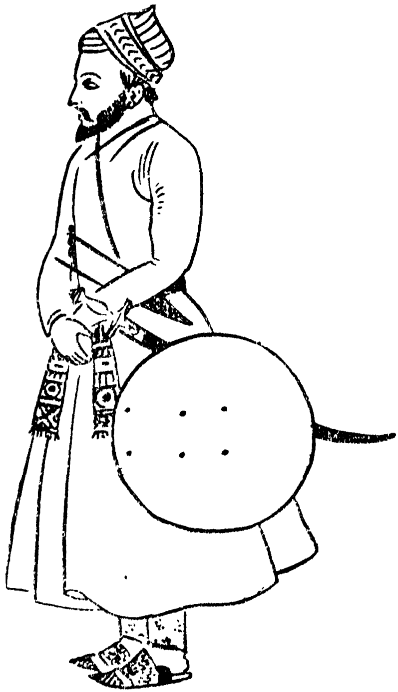
भारतीय कला की बहती धारा में जब-जब नये स्रोत आ मिले हैं, तब-तब उसमें विशेष गति और सुन्दरता आई है। ईरानी कला का भारतीकरण वही नई धारा थी, जिसने भारत को एक नई शैली दी। वह कलम भारत में ही जन्मी और बढ़ी गो उसको जन्म देनेवाले विदेशी और भारतीय



दोनों थे, दोनों ऐसे जो इस देश को अपना घर मानते थे। मुगलों ने भारत को बहुत कुछ दिया—क़ौमी मेल, सशक्त शासन, संसार की एक-से-एक सुघड़ इमारतें और वह अद्‌भुत चित्रशैली, 'मुग़ल कलम' जो अजन्ता के बाद भारतीय चित्र-कामिनी की मुकुट-मणि है।

मुगल-शैली के चित्रों में तीन तरह के चित्र विशेषतः पाये जाते हैं——व्यक्ति-चित्रण, पुस्तक-चित्रण और विविध

स्थितियों के प्रकृति अथवा सौन्दर्य या घटना-चित्रण। इनमें से पहले दो प्रकार के चित्रों की सोलहवीं सदी या अकबर-हाल में विशेषता है गो इसका मतलब यह हरगिज़ नहीं है कि तीसरे प्रकार के चित्र तब नहीं बने या पहले दूसरे प्रकार के चित्र पीछे बहुत कम हो गये।



अकबरकालीन चित्रों में पोथी विषयक चित्र बहुत हैं। अनेक फारसी, संस्कृत, हिन्दी की पुस्तकों को चित्रों द्वारा स्पष्ट और अलंकृत किया गया। उस काल अनेक संस्कृत ग्रंथों का फ़ारसी अनुवाद भी हुआ जिनमें अनुपम कलाकारों के चित्र भर गए। इनमें हाज़ा के किस्से, चंगेज़नामा, ज़फ़रनामा, आईने-अकबरी, अकबर-नामा, शाहनामा, तवारीख-खानदाने-तैमूरिया, रज़्मनामा (महाभारत), रामायण, नल-दमयन्ती के चरित, कलीला-

दमना (पंचतंत्र) आदि अनेक इतिहास, कानून व साहित्य के ग्रंथ चित्रों से सज गए। और इन चित्रों से एक दूर की पुरानी भूली हुई दुनिया फिर से जी उठी है। और इनमें चित्रों की संख्या अनगिनत है। अकेले 'किस्सा अमीर हम्जा' की बारह जिल्दें तैयार हुईं जिनमें चौदह सौ चित्र लगाये गए। रामायण, महाभारत और पंचतंत्र के किस्सों की बहुतायत से उनके चित्रों का अन्दाज़ भी लगाया जा सकता है। इनमें से कुछ पोथियाँ अपने देश के अजायबघरों में, बाकी अधिकतर विदेशों में आज भी सुरक्षित हैं। ये सभी पोथी-चित्र सन् १६०५ में अकबर की मृत्यु से पहले तैयार किये जा चुके थे। ये सारी पोथियां आज उपलब्ध नहीं, पर इनके इक्के-दुक्के अनेक चित्र देखने में आ जाते हैं। और ये पोथियां भी कुछ थोड़ी नहीं हैं। कुछ तो अकबर ने स्वयं बनवाईं, कई बार दो-दो, तीन-तीन प्रतियों में। कुछ शाहज़ादों, अमीर-उमरों ने अपने लिये, कुछ बादशाह और अमीरों ने उपहार-भेंट देने के लिये, और कुछ प्रकाशक-सौदागरों ने बेचने के लिये। पंचतंत्र के कई चित्रित फारसी अनुवाद तैयार हुए। इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय 'अनवार सुहेली' है, जिसकी शायद चार प्रतियां तैयार हुई थीं। ये चारों आज संग्रहालयों में हैं—एक बलरामपुर में है, दूसरी रामपुर में, तीसरी ब्रिटिश म्यूज़ियम, लन्दन में है, चौथी

रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन में। इनके चित्रकारों की संख्या सोलह है जिनमें दस हिन्दू और छः मुसलमान हैं।

अकबर जो सहिष्णु नीति अपने शासन के रवैये में बरतता था वही कलाकारों के चुनने में, यानी उसके सामने हिन्दू मुसलमान का भेद न था। हुनर की ख़ूबी ही उसके प्रसाद और आकर्षण का कारण थी, जिससे देश-विदेश से उसने कलम के कलावन्तों को चुनकर अपने दरबार में रखा था; उन्हें ऊँचे-ऊँचे मनसब और ओहदे दिये थे। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि चित्रकला में निष्णात अकबर का प्रसाद पाये उच्चकोटि के चितेरों की संख्या सौ से अधिक थी और साधारण कोटि के कलावन्तों की तो कोई गिनती ही न थी। हाँ, मुसलमान चितेरों से कहीं अधिक संख्या हिन्दू चितेरों की थी और उनके बीसों नाम—केशो, लाल, मुकुन्द, माधो, जगन, महेश, खेमकरन, तारा, साँवला, हरबंस, राम आदि हमें मालूम हैं। अकबरकालीन चार चितेरों के नाम विशेष आदर से लिये जाते हैं। इनका उल्लेख अबुलफ़ज़ल ने भी किया है। इनमें दो तो हुमायूँ द्वारा ईरान से लाए हुए, तबरेज़ का मीर सैयदअली और शीराज़ का ख्वाजा अब्दुस्समद थे। दूसरे दो दसवंत (जसवंत) और बसावन, हिन्दुस्तानी थे।

अकबर ने इस प्रकार अपने को सांप्रदायिक ओछेपन से

दूर रखा। इस्लाम के निषेध के बावजूद उसने आदमी और जानवरों की तस्वीरें बनवाईं और हज़ार-हज़ार रंगीन रेखाओं में उसके चितेरों ने प्राण के जादू फूँके। अकबर देशी-विदेशी दोनों साहित्यों-संस्कृतियों का धनी था, हिन्दू-मुसलमान दोनों हुनरमन्द चित्रकारों का संरक्षक। इससे दोनों की संपदा का वह मालिक बना। उसने देशी विषयों के चित्रण के लिये विदेशी कलाकारों का उपयोग किया, शायद उसी तरह जैसे कभी ग्रीक राजाओं ने ग्रीक मूर्तिकारों का उपयोग किया था। पर जहाँ भारतीय ग्रीक या गान्धार शैली कभी शुद्ध ग्रीक शैली के बराबर तक न उठ सकी, भारतीय मुग़ल शैली ईरानी क़लम से साफ़ बाज़ी मार ले गई। अकबर की सहिष्णुता ने सोने में सुगन्ध बिखेर दी।

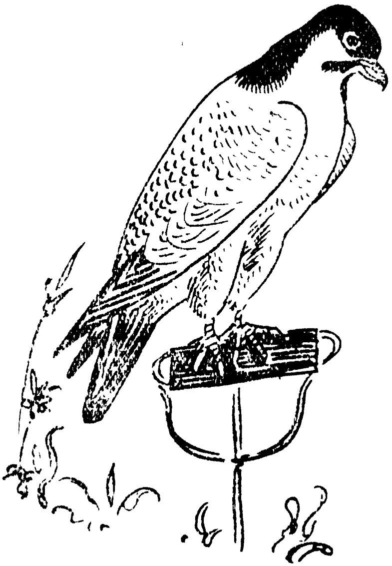
अकबर के बाद जहाँगीर मुग़ल-सम्राट् हुआ। कहना न होगा कि चित्रों को समझ-परख, अपनी सुरुचि और सोफ़ियानापन में वह बाप से भी बढ़ा-चढ़ा था। जहाँगीर-कालीन मुग़लकला चित्रकला का स्वर्ण-युग है। यह युग उस कला का सुन्दरतम काल है। जहाँगीरी चित्रकला के सम्बन्ध में तीन-चार बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—ईरानी रुख़, घटनापरक रूपायन, प्राकृतिक सौन्दर्य और स्वाभाविकता।

अकबर ने अपने पास ईरानी चितेरे मीर सैयदअली

और ख्वाजा अब्दुस्समद के होते हुए भी शैली का भारतीयकरण किया था। जहाँगीर अपने ईरानी चितेरों के साथ एक बार फिर ईरानी शैली की ओर झुका। आक़ा रिज़ा और उसके बेटे, जहाँगीर के प्रिय चित्रकार अबुलहसन के बनाये चित्रों में ईरानी क़लम फिर से जी उठी। पर धीरे-धीरे उस से जहाँगीर विरक्त हो गया और स्थानीय घटनापरक रूपायन की ओर वह झुकता गया। कुछ पोथियाँ फिर भी चित्रों द्वारा अलंकृत होती रहीं। जहाँगीरनामा इसी प्रकार की सचित्र पोथी है। पर ज्यादा आकर्षण अब घटनाओं की ओर है; जहाँगीर के जीवन और दरबार-सम्बन्धी घटनाओं की ओर। इनमें से अनेक साधु-सन्तों आदि से भी संबन्ध रखती हैं। इसी प्रकार के चित्रों में बिशनदास बेजोड़ था। शेख़ फूल नामक सूफी सन्त का प्रसिद्ध चित्र उसी का बनाया हुआ है। ईरान के शाह का चित्र बनाने को भी जहाँगीर ने इसी बिशनदास को भेजा था और वह चित्र इतना सुन्दर बना कि शाह अब्बास और बिशनदास दोनों अमर हो गए। जीवन-संबन्धी घटनाचित्रों में कुछ भावचित्र भी हैं, जिनमें क्रोध, घृणा, करुणा आदि की अपूर्व अभिव्यक्ति हुई है।

प्राकृतिक सौन्दर्य का अंकन जितना और जितनी दक्षता से जहाँगीर के चित्रकारों ने किया, उतना कभी नहीं हुआ। शिकार के चित्रों में पक्षी अपना भय, क्रोध लिये

हुए हैं। उनका व्यक्तित्व सर्वथा निजी है। पशु-पक्षियों के चित्रों में जहाँगीरकालीन चित्रकला लासानी है। मंसूर उनका बेजोड़ चितेरा था। प्रकृति का निरीक्षण भी उनमें खूब है। पेड़-पौधों का इतना सुन्दर रूपायन अन्यत्र नहीं मिलता। पत्ता-पत्ता जैसे जी उठता है, हिल उठता है। पहाड़, नदी, बादल चुप्पी में भी जैसे अपनी बातें कह उठते हैं।



मुगल-शैली में चित्रित एक पक्षी

चौथी खूबी उस कला की स्वाभाविकता है। इतनी सादगी, सुरुचि और सच्चाई से चित्र-वस्तु का निरूपण कभी नहीं हुआ। जैसे चित्रकारों की तूलिका से चित्र-सम्पदा अनायास जी उठती है, कहीं आवश्यकता से अधिक प्रयास नहीं, एक लकीर कहीं ज्यादा-कम नहीं जो बदली जा सके या घटाई-बढ़ाई जा सके। इस स्वाभाविकता का कारण यूरोपीय कला से सम्पर्क बताया जाता है। जब-जब भारतीय

संस्कृति और कला का सम्बन्ध विदेशी संस्कृति और कला से हुआ है, तब उसमें नई जान, नई शक्ति आ गई है। ईरानी और भारतीय शैली का विकास मुग़ल कलम में हुआ और मुग़ल कलम और यूरोपीय शैली का विकास जहाँगीरकालीन सुथरी, स्वाभाविक कला में। तभी यूरोप में इटली-स्पेन से हालैंड तक असाधारण चितेरों का सिलसिला लगा हुआ था, एक-से-एक अभिराम चित्र वहाँ बन रहे थे। 'रेनेसाँ' की भावधारा ने यूरोपीय चितेरों का सम्पर्क जन-जीवन से स्थापित कर दिया था; अनेक चित्रकार निचले स्तर से उठे भी थे। और इन यूरोपीय चित्रों की बाढ़-सी जहाँगीर के दरबार में आ गयी। उसके दरबार में अनेक यूरोपीय आये, उनके साथ अनेक चित्र आये, उनकी कितनी नक़लें दरबारी भारतीय चितेरों ने कीं। नक़लें ऐसी कि असल के पास रख देने पर असल के मालिक असल-नक़ल का भेद न पा सके। इससे यूरोपीय चित्रकला का जहाँगीरी क़लम पर प्रभाव पड़ना लाज़िमी था।

जहाँगीर के चित्रकारों में भी हिन्दू चितेरों की संख्या अधिक थी। बिशनदास का नाम ऊपर आ चुका है। उसके अलावा मनोहर, गोवर्धन आदि अनेक और प्रख्यात चित्रकार उस काल की मुग़ल क़लम को सँवार रहे थे।

शाहजहाँ की शानोशौकत उसकी इमारतों की ही भाँति

उसके चित्रों में भी उतरी। रंगों, शक्लों आदि में कीमतीपन आया। शाहजहाँ-काल की चित्रकला की दो विशेषतायें, चित्र में अधिकाधिक नारी-रूपों का निरूपण और ईसाई धर्म के चित्रण, हैं। यूरोपीय चित्रकला के सम्पर्क से भारतीय-मुगली चित्रों पर फिरंगी असर तो जहाँगीर के ही समय से पड़ने लगा था। यूरोपीय-हिन्दुस्तानी ईसाइयों की भी एक बड़ी संख्या देश में हो गई थी। दूर दक्खिन में तो उनकी बस्तियाँ थीं ही, पूरब में भी पुर्तगाली, डच वगैरह लोगों को ज़बर्दस्ती ईसाई बनाने लगे थे जिसका शाहजहाँ ने जंगी प्रतिकार भी किया था। ख़ैर, मुग़ल क़लम में जो ईसाई चित्र बने उनमें विशेषतः दोनों शैलियों का संगम था।

शाहजहाँ के चित्रकारों में भी हिन्दू चित्रकारों की संख्या ख़ासी थी। चतुर्मणि, अनपचतुर, बालचन्द, होनहार, बिचित्र आदि उस काल के प्रसिद्ध हिन्दू चितेरे थे। इन्हीं हिन्दू चितेरों में विख्यात फ़तहचन्द था, जिसने बलख़ का अभिराम चित्र खींचा था। बलख़-फ़रग़ना को जीतने के लिये अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ सभी ने कोशिश की थी। शाहजहाँ के समय उसके बेटे मुराद ने कुछ साल के लिये उसे जीता भी था।

औरंगजेब कट्टर मुसलमान था और उसका दृष्टिकोण बड़ा संकुचित था। वह कला की ओर से सर्वथा उदासीन

था। वही मुग़ल साम्राज्य के विध्वंस का कारण हुआ। मुग़ल साम्राज्य के टूटने और औरंगजेब की ही बेरुखी से दिल्ली-आगरे के चित्र-केन्द्र भी टूट गये। फिर भी औरंगजेब की ही अनेक तस्वीरें मिलती हैं। ज़ाहिर है कि कला की साधना बराबर होती रही। मुग़ल-कलम का गौरव मुहम्मदशाह के ज़माने तक बना रहा। पर नादिर-शाह और अहमदशाह अब्दाली की चोट ने ज़रूर उसे तितर-बितर कर दिया। शाहआलम के ज़माने में भी उस शैली के कुछ सुन्दर चित्र बने पर अब चितेरों के परिवार दिल्ली-आगरा छोड़ और-और प्रान्तों में नये दरबारों का आश्रय ले चुके थे। उन नयी पीठों में प्रधान लखनऊ, हैदराबाद, मुर्शिदाबाद, पटना आदि थे, जहाँ पिछली मुग़ल शैली की क़लम लगी। साथ ही इन मुग़लिया चितेरों के देसी रजवाड़ों के यहाँ चले जाने से राजस्थानी शैली में भी मुग़ली क़लम का निखार आ गया। इन कलावन्तों ने उस पहाड़ी क़लम को भी अपनी कला और साधना से सींचा जिसकी कितनी ही शाखें पहाड़ों में फूट पड़ी थीं। उन्नीसवीं सदी के तीसरे चरण तक दिल्ली-आगरे का मुग़ल-चित्र-केन्द्र टूट चुका था।

दक्षिणी शैली—अकबर के समय ही दक्षिण की बहमनी आदि रियासतों में चित्रकला के क्षेत्र में नयी स्फूर्ति आयी। पश्चिमी और राजस्थानी कला की बेलें तो वहाँ कब की लग

चुकी थीं; समय आने पर दक्षिण में मुग़ल प्रभाव भी बढ़ा और मुग़लिया सल्तनत के टूट जाने पर तो विशेषकर हैदराबाद की निज़ामत ने उसे अपने संरक्षण में ले लिया। इन दक्षिणी चित्रों की विशेषता उनकी आकृतियों का लम्बा कद, धारीदार पहरावा आदि हैं। उनमें फूल-पत्ती का भी खासा व्यवहार है।



एक दक्षिणी चित्र

आगे हम उस पहाड़ी शैली का उल्लेख करेंगे जो स्थानीय और मुग़ल चमत्कारों से सजीव हुई और जिसकी मौलिकता भारतीय चित्रकला में अपना स्थान रखती है।

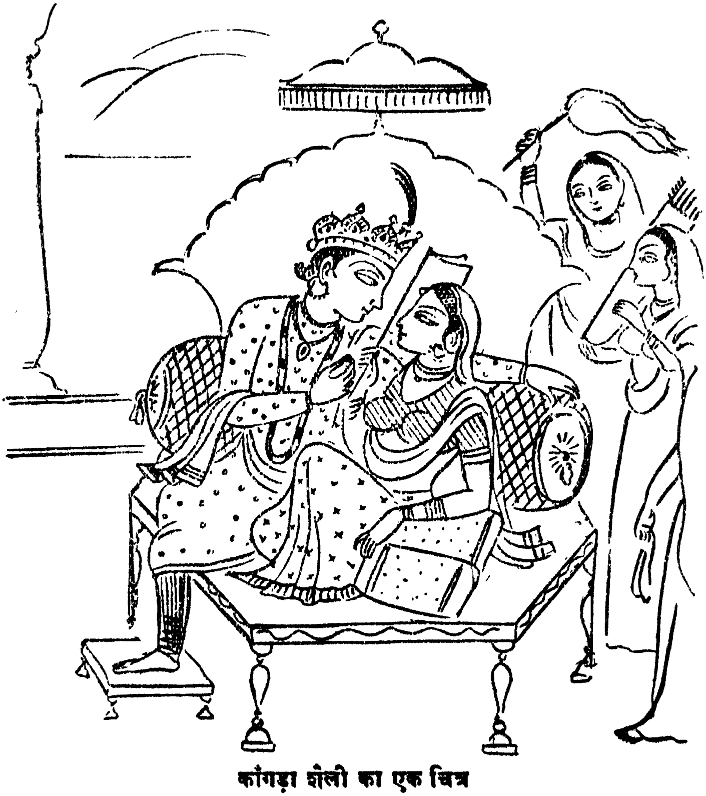
: ९ :

पहाड़ी शैली

अट्ठारहवीं सदी के बीच जब मुग़ल सल्तनत उखड़ गई तब सैकड़ों प्रसिद्ध दरबारी चितेरे बेकार हो गये। उससे पहले ही औरंगजेब की बेरुख़ी से ही अनेक कलावन्त दिल्ली-आगरा छोड़ चुके थे। ये अन्य रजवाड़ों में पूरब, उत्तर, दक्षिण तो गये ही, हिमालय के पहाड़ी दरबारों में भी पहुँचे। वस्तुतः इनकी सबसे सशक्त परम्परा इन्हीं पहाड़ी रियासतों में बनी। वैसे चंबा, मंडी, काँगड़ा, नहान, सिरमौर, टिहरी-गढ़वाल आदि अनेक केन्द्र इस शैली के बने, पर अधिकतर, काँगड़ा दून में होने के कारण इसका एक नाम काँगड़ा क़लम भी पड़ा। वैसे काँगड़ा पहाड़ी शैली का एक प्रकारमात्र है।

पहाड़ी शैली के आरंभ और प्रौढ़ता का श्रेय मुग़ल दरबारी चितेरों को दिया जाता है। वे मुग़ल शबादत और सौफ़ियानापन लिये आए थे और उन्होंने अपनी प्रौढ़ कला से पहाड़ी शैली को सम्पन्न किया। पहाड़ी शैली का युग अधिकतर अट्ठारहवीं सदी के मध्य से उन्नीसवीं सदी के

मध्य तक, प्रायः सौ वर्ष, माना जाता है। मुग़ल क़लम के दरबारीपन की जकड़ और आभिजात्य पहाड़ी परिस्थितियों ने तोड़ दिये। एक नया, अभिराम, निर्द्वन्द्व जीवन इन नये चित्रों में चमक उठा। अतीत और वर्तमान के प्रति आदर से पहाड़ी चित्रकार का मस्तक झुका। एक-से-एक हज़ारों



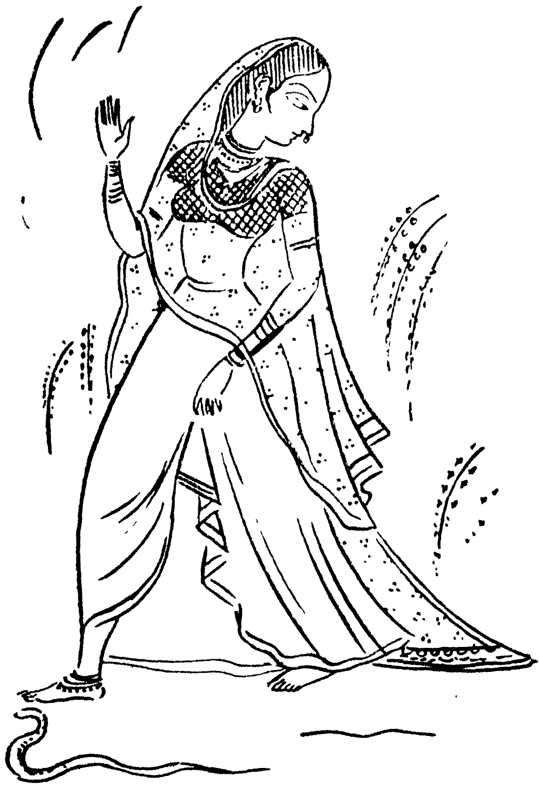
कांगड़ा शैली का एक चित्र

चित्र उसकी जादू की छड़ी से निकलने लगे। सुकुमार कलेवर, मनोहर वपुकान्ति, स्पष्ट भावधारा, गतिमान घटना पहाड़ी चित्रों में अभिव्यक्त हुई। रामायण, महाभारत, भागवत, हरिवंश पुराण, गीतगोविन्द की अनन्त स्थितियाँ उनमें चमक उठीं। कृष्ण के प्रति, विशेषतः मध्यकालीन भावना विशेष रुचि से इनमें लिखी गयी। ब्रज की प्रधान भावभंगिमाएँ और विश्वास, कृष्ण-केलि, रास, गोप-गोपी, पशुचारण आदि अद्‌भुत क्षमता से चित्रित किये जाने लगे। इस प्रकार के चित्रों की बाढ़-सी आ गई। आज ऐसे हज़ारों चित्र हैं जो मुग़ल शबादत की मदद से अपनी चित्र-सम्पदा की रीढ़ बन गये हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि काँगड़ा क़लम की पहाड़ी चित्रों में प्रधानता थी। एक तो इस कारण कि पहाड़ी रियासतों का एक ख़ास परिवार काँगड़ा की दून में बसा था, दूसरे काँगड़ा में पहाड़ी शैली को उस नाम की रियासत ने विशेष प्रोत्साहन दिया। वहाँ के राजा संसारचन्द ने अट्ठारहवीं सदी के अन्तिम चरण से उन्नीसवीं सदी के पहले चरण तक अपने संरक्षण द्वारा इस नई शैली को सभी प्रकार से बढ़ाया।

उस शैली की एक विशिष्ट बेल गढ़वाल में लगी। मोलाराम का नाम उस दिशा में बड़ा नसद्ध हो गया है।

पर शायद उससे भी कीर्तिवान् और सफल कलावन्त गढ़-वाल की चित्रकला पर अपनी मुहर लगा गये हैं। साधा-



गढ़वाल की पहाड़ी शैली

रणतः अनेक चित्र जो मोलाराम के बनाये बताये जाते हैं, वास्तव में उसकी कूँची से नहीं निकले।

पहाड़ी शैली की क़लम मैदानों में भी लगी—लाहौर, अमृतसर में। गुरुओं के अनेक चित्र उसी शैली के हैं और



अमृतसर की पहाड़ी शैली

पहाड़ी परम्परा में अपना स्थान रखते हैं। पहाड़ी परम्परा में काम करनेवाले अनेक चितेरे आज भी पहाड़ों में हैं पर चित्रकारिता में उन्नीसवीं सदी में जो ह्रास हुआ है उसके

वे आज तक शिकार हैं। अधिकतर उनका काम पुरानी कृतियों की नकल करना रह गया है। रीतिकाल के हिन्दी कवियों की पंक्तियों को लेकर जो पहाड़ी कलाकारों ने अनेक चित्र बनाये थे, उनकी नकल करने वाले चितेरे पहाड़ों में काफ़ी तादाद में आज भी मिलते हैं।

: १० :

भारतीय शैली का विस्तार और अनुकरण

चित्रों की भारतीय शैली भारत के विचारों और उसकी मूर्ति शैली की ही भाँति भारतीय सीमाओं में बँधी न रह सकी। अपने धर्म और विचारों के प्रसार के सिलसिले में इस देश ने बाहर के दूर-समीप के देशों पर व्यापक और गहरा प्रभाव डाला। प्राचीन काल से ही बाहर के उत्तरी, पूर्वी और समुद्री देशों में यहाँ के उपनिवेश बनने लगे थे। साथ ही उनसे और अन्य देशों के साथ भारत का पुराने ज़माने से व्यापारिक संबन्ध रहा था। इसके अतिरिक्त स्पष्ट प्रचार की नीति से भी भारतीय विचारों का उधर प्रसार हुआ। जहाँ-जहां भारतीय उपनिवेश बने या भारतीय विचार पहुँचे वहां-वहां भारतीय संस्कृति की बेलें लगीं, मूर्ति और चित्रकला स्थानीय विशेषताओं के साथ पनपी। नीचे उसी भारतीय चित्रकला का बयान दिया जाता है।

उस काल की भारतीय संस्कृति के ऋणी मध्य एशिया के कुछ भाग, चीन, कोरिया, जापान, तिब्बत, बर्मा, स्याम,

कम्बुज, जावा, सुमात्रा, बाली, सिंहल (लंका) आदि सभी हैं। सिंहल में तो प्रायः अजन्ता या गुप्तकाल में ही भारतीय परम्परा के भित्तिचित्र बन गए थे। इनमें हवा में उड़ती देवाकृतियां बड़ी भव्य हैं। इस गुप्तकाल के पहले ही खुत्तन, चीन, कोरिया, जापान, बोर्नियो, कम्बुज, बर्मा आदि पर भारतीय प्रभाव स्पष्ट हो चुका था।

इसी से प्रायः सौ-दो-सौ साल पहले पामीरवर्ती भूमि तुखारिस्तान आदि पर भारतीय विचारों की छाप पड़ी थी। वहां के तकलामकान रेगिस्तान में अनेक भित्तिचित्रों, लकड़ी, रेशम आदि पर बने चित्र मिले हैं। इनमें मीरान के मन्दिर के चौथी सदी के भित्तिचित्र भी हैं। इनके अतिरिक्त वहां सातवीं-आठवीं सदी के भी अनेक भारतीय हिन्दू और बौद्ध देवताओं के चित्र मिले हैं। कूचा की गुफाओं के शिव-पार्वती, इन्द्र, ब्रह्मा आदि के चित्र इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका संग्रह नई दिल्ली के मध्य-एशिया सम्बन्धी अजायबघर में है।

वैसे ही उत्तर की राह से भारतीय चित्रकला चीन, जापान और कोरिया पहुँची। जब चीन के कान्सू प्रान्त के हूण भारत में अपने आक्रमणों से गुप्त साम्राज्य का अन्त कर रहे थे, ठीक तभी पांचवीं-छठी सदी में उनके अपने ही घर कान्सू में भारतीय प्रचारक अजन्ता की परम्परा में तानहुआंग की

सैकड़ों गुफाएँ बनवा रहे थे। शीघ्र ही बाद में अजन्ता के ही अनुकरण पर वहां के गुफा-मन्दिरों में भित्तिचित्र लिखे गये। उन्हीं में से कुछ विद्याधरियों के चित्र आज की जनवादी सरकार के राष्ट्रीय रंगमंचों की यवनिका पर चित्रित हैं। आठवीं सदी में बने होरिउजी और नारा के बौद्ध बिहारों के चित्र आज भी वहां देखे जा सकते हैं।

तिब्बत में वैसे तो भारतीय बौध धर्म कभी का पहुँच गया था, पर उसके ध्वज-चित्र भारतीय विषयों के साथ दसवीं-बारहवीं सदी में बने। तिब्बत में ध्वज-चित्रों की परम्परा खुत्तन आदि से आई। नेपाल तो बराबर ही भारतीय संपर्क में रहा था; उसी प्रकार उसका तिब्बत और चीन से भी व्यापक सम्बन्ध सदियों बना रहा।

बर्मा, स्याम और कम्बुज के पगोड़ों में सैकड़ों भित्ति-चित्र ग्यारहवीं से तेरहवीं सदी तक बनते रहे थे जो भारत की देन है।

: ११ :

राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन-युग

इससे पहले कि हम अपने राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन-युग के चित्रों का बयान लिखें, उससे पहले की दो-एक बातों को समझ लेना मुनासिब होगा।

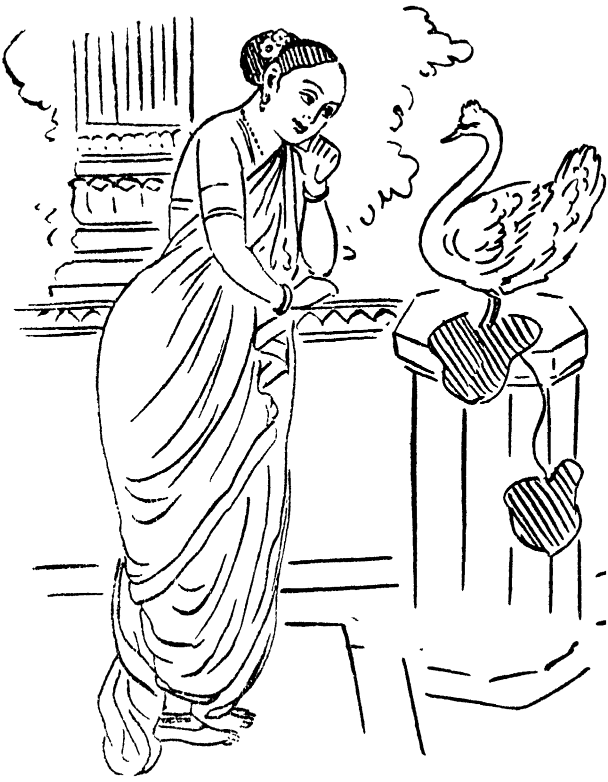
पहले ही कहा जा चुका है कि जहाँगीर के अद्भुत मुग़ल-काल की चित्रकला पर ही यूरोपीय कलम का प्रभाव पड़ने लगा था। धीरे-धीरे वह प्रभाव अंग्रेजी सत्ता के साथ-साथ स्वदेशी शक्ति के अभाव में बढ़ा। वह प्रभाव दो क्षेत्रों मे विशेष गहरा देखा जा सकता है; दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं।

एक तो उस प्रभाव ने वह रूप धारण किया जिसे भारतीय चित्रकला में पटना-शैली कहते हैं और इस प्रभाव को बुरा नहीं कहा जा सकता। यूरोपीय हाथीदांत और कागज़-सम्बन्धी चित्रकला विशेषतः वेनिस की ओर से यहाँ पुर्तगालियों-अंग्रेजों के ज़रिये आई थी। उसे पटने के चित्रकार-साधकों ने विशेष रूप से साधा। वहाँ इनके कई घराने उठ खड़े हुए। इन्हीं में आरावाले ईश्वरीप्रसाद का

घराना भी है। इस शैली के कलाकार छोटे आकार के चित्र बनाते हैं, यूरोपीय प्रभाव के साथ ही मुग़ल महीनी के अनुरूप। इस शैली का आरम्भ विशेषतः अठारहवीं सदी के पिछले चरण में हुआ। बनारस के प्रसिद्ध कलावन्त दल्लूलाल, लालचन्द और गोपालचन्द इसी पटना-कलम के ही चितेरे थे। इस शैली की टहनियाँ दिल्ली, लखनऊ, मुर्शिदाबाद, पूना, सितारा आदि में भी लगीं।

यूरोपीय क़लम का दूसरा असर दक्षिण और पश्चिम के कलाकारों पर पड़ा। यह असर बड़ा मारक सिद्ध हुआ। मजे की बात तो यह है कि उस समय उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में चीन-जापान के प्रभाव से यूरोप में जो नये प्रकार के प्रयोग चित्रकला में होने लगे थे, उनका स्पष्टीकरण भारत ने न किया। केवल उनकी स्थूल रूपकारिता ने यहाँ के दक्षिणी और पश्चिमी कलाकारों को अपने प्रभाव में जकड़ लिया। त्रिवेन्द्रम् और बम्बई इसके केन्द्र बने। राम-कृष्ण, शिव-पार्वती, गणेश, लक्ष्मी, सरस्वती के कागज पर बने चित्र उस प्रभाव के परिणाम हैं। त्रिवेन्द्रम् का रविवर्मा इस कला में विशेष निपुण हुए। पर यह दोगली कला न भारतीय भाव-सौन्दर्य को छू सकी, न यूरोपीय अंकन-शक्ति को। दोनों की कमज़ोरियाँ ही इसकी उपास्य बनीं। इन्हीं दिनों भारत में जो अंग्रेजी 'आर्ट स्कूल' बने उनसे कला

सम्बन्धी भारतीय दृष्टिकोण पर भले-बुरे दोनों असर पड़े। एक असर तो किसी अंश में यही था जिसका उल्लेख अभी



रविवर्मा की शैली

किया गया है। दूसरा अपने देश के पुनर्जागरण-आन्दोलन से जुड़ा हुआ है।

उन्नीसवीं सदी के चौथे चरण से बीसवीं सदी के प्रायः मध्य तक, ७५ वर्ष, हमारे राष्ट्रीय जागरण और आन्दोलन से सम्बन्ध रखते हैं। ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज, थ्यासोफ़ी, स्वदेशी, होमरूल, असहयोग, विविध सत्याग्रह-आन्दोलन, सामाजिक सुधार और आज़ादी के लिए संघर्ष के विभिन्न रूपों में प्रकट हुए। इन्हीं के साथ अतीत-गौरव की प्रेरणा भी जुड़ी थी। और जब ऐतिहासिक, सांस्कृतिक यूरोपीय-भारतीय खोज ने प्राचीन शालीनता के आँकड़े प्रस्तुत कर दिये तो भारतीय चिन्तन ने विशेषतः प्राचीन की ओर देखने का, प्राचीन को फिर से जीवित करने का नारा बुलन्द किया। कला का क्षेत्र उससे अक्षुण्ण न रह सका। उस पर भी इसका असर पड़ा, विशेषकर जब विदेशी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष के कारण प्रायः सभी विदेशी वस्तुओं से चिढ़ हो गई और नया स्वदेशी कुछ प्रेरणात्मक शालीन न था तो चित्रकला में भी अतीत की ओर दृष्टि गई। अजन्ता का अद्भुत गौरवमय आदर्श हाल ही का मिला था; फिर तो वह प्रेरणा बना, वही आदर्श शैली बनी। एक आन्दोलन ही उठ खड़ा हुआ। उस आन्दोलन के नेता कलकत्ता आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल हैवेल और चित्र-शिक्षक अवनीन्द्रनाथ ठाकुर थे।

उस आन्दोलन के प्रधान केन्द्र ठाकुर ही बने। उन्होंने

अतीत को फिर से जीवित करने का आदेश दिया। कम-से-कम उनका आन्दोलन कला में स्वस्थ राष्ट्रीय आन्दोलन



अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कलाकृति

था, बम्बई केन्द्र के कला-कौशल से दूर, विरोधी। स्वयं अवनीन्द्र कुशल चितेरे थे। उनमें अजन्ता, मुग़ल, पहाड़ी चीनी, जापानी सभी शैलियों को जज्ब कर लेने की अद्भुत क्षमता थी। उनकी प्रतिभा असाधारण थी। परन्तु निःसंदेह उनका आन्दोलन उनकी कला से कहीं व्यापक और महान् था। अजन्ता शैली फिर से बंगाल में जीवित हुई। उनके

शिष्यों-प्रशिष्यों ने अजन्ता-शैली अपनाली। वह शैली प्रायः देश-व्यापी हुई।

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने चित्रकला के क्षेत्र में कुछ असाधारण ओजस्वी शिष्य उत्पन्न किये। नन्दलाल बोस, असित-हालदार, मुकुल दे, देवीप्रसाद रायचौधरी आदि अनेक मेधावी शिष्य-चितेरों ने अजन्ता के चित्रों की नकल की, अजन्ता शैली साधारणतः अपना ली। नन्दलाल बोस इनमें प्रधान थे। शान्ति-निकेतन इनका केन्द्र बना, वैसे ये प्रायः सारे भारत में फैल गये। कलेन्डरों पर, निमन्त्रण-पत्रों तक में



यामिनी राय की एक कलाकृति

अजन्ता-अभिप्राय ही छपने लगे।

पश्चिमी भारत में भी किसी-न-किसी रूप में उसका असर घर कर चला। वैसे बंगाल के यामिनी राय ने गाँव की सशक्त कला-धारा अपनाई और उस दिशा में एक नया क़दम उठाया। उत्तर-पश्चिम भारत, उत्तर प्रदेश आदि में एक नई रोमैंटिक शैली चली जिसमें अजन्ता का गहरा पुट था। विजयवर्गीय, जिज्जा, ईश्वरदास आदि सब इसी वर्ग के थे। सभी अजन्ता-मुगल के संयोग से उठे। इनमें केवल यामिनी राय ने चित्रकला में क्रान्ति-सी उपस्थित कर दी।

: १२ :

वर्तमान युग

उपर्युक्त सभी चित्रकार श्रौर श्रवनीन्द्रनाथ ठाकुर तथा उनके शिष्य-प्रशिष्य वर्तमान युग के ही हैं। यद्यपि उनकी प्रेरणा श्रौर शैली श्राधुनिक नहीं है। नये क्रान्तिकारी युग के निर्माताश्रों में विशिष्ट यामिनी राय श्रौर श्रमृता शेरगिल हैं। श्रमृता शेरगिल ने चित्रकला में सामाजिक यथार्थवाद का श्रारम्भ किया। उसकी तूलिका में ग़ज़ब की शक्ति थी। भारतीय सामाजिक श्रभिप्रायों को उसने विविध रूपों से श्रपने चित्रों को व्यक्त किया। वधू का केश-प्रसाधन, ग्राम्य-जीवन श्रादि के प्रसंग उसकी तूलिका से खूब बन पड़े हैं। इनमें महान् 'भारतमाता' है, बच्चों के साथ जिसकी रुग्ण काली काया देखने वालों को केवल चकित ही नहीं कर देती कुछ कर गुज़रने को मजबूर करती है। सामाजिक यथार्थवाद ही नहीं शायद समाजवादी यथार्थवाद उसकी कूँची का ध्येय था। उसने श्रपने श्रभिप्रायों को बहुत दूर से नंगा करके देखा था। मनुष्यता के प्रति उसमें श्रद्भुत सहानुभूति एवं गहरी समवेदना थी। जैसे श्रफ्रीकी माडलों द्वारा गोगें ने फ्रांस की सड़ी रुचि का परिष्कार करना चाहा था,

अमृता शेरगिल ने उसी प्रकार भारत के अतीतजीवी रोमैंटिक चित्रादर्श के अन्धकार को सामाजिक यथार्थवाद के प्रकाश से दूर करना चाहा था। खेद है कि वह मेधाविनी तरुणी अकाल ही चिरनिद्रा में सो गई।


अमृता शेरगिल की कला

पिछले पचास वर्षों में यूरोप में अनेक चित्र-शैलियों के प्रयोग होते रहे हैं। सेज़ान, मोने, माने और बाद में जार्ज ब्राक, मातिस, पिकासो, हाली आदि उसके अगुआ रहे हैं। संभव न था कि इनका प्रभाव इस देश की कला पर न पड़ता। इस प्रकार के नये प्रयोग इस देश में पहले-पहल अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के भाई गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने किये, त्रिकोणों और सीधी लकीरों की आकृतियों द्वारा, सेज़ान के अनुकरण में। पर, उनके साथ ही शायद वह प्रयास समाप्त

हो गया। एकाध प्रयास उस प्रकार के और देखने में जरूर आये हैं पर उनमें ओज की कमी रही है।

इधर यूरोप की नयी शैलियों से शक्ति ग्रहण कर अपने देश में अपनी नई राह निकालने वाले चितेरे अधिकतर पश्चिमी भारत के हैं; बम्बई, गुजरात और महाराष्ट्र के भी हैं। बम्बई यूरोप से आने वाले विचारों की पहली अवतरण-भूमि है और यह स्वाभाविक था कि पश्चिम का प्रकाश उसी खिड़की से उतरे। आरा, बेन्द्रे आदि उसी परम्परा के हैं। इनमें अनुभूति गहरी होती है, अभिव्यंजना सशक्त। इनमें प्रधान मक़बूल फ़िदाहुसेन है, जिसकी कलाकारिता ग़ज़ब के डग भरने लगी है। उनके अभिप्राय आभिजात्य नहीं होते, रूखे ग्रामीण होते हैं। आकृतियाँ खुरदरी 'अव-चेतन' होती हैं पर उनकी अभिव्यक्ति ग़ज़ब की होती है। रंग के धब्बे व्यापक सहानुभूति मुखरित करने में सहायक होते हैं। हरा रंग अक्सर गरीबी और उदासी को रूपायित करता है। अगला ज़माना मक़बूल को भरपूर समझेगा।

रामकिंकर बैज ने भी कुछ सामाजिक रूपायन के प्रयोग किये हैं जो अत्यन्त सबल हैं। मूर्ति और चित्र दोनों क्षेत्रों में रामकिंकर की मेधा ओजस्विनी है, उसके प्रयोग सार्थक और सुपुष्ट हैं। इधर अनेक नए कलावन्त मक़बूल और रामकिंकर की राह चल पड़े हैं। पर भारतीय चित्र-दिशा

का अगला क़दम निश्चय जनप्रेरक अभिप्रायों के सोद्देश्य प्रकाशन में उठेगा। भविष्य का प्रशान्त जनमार्ग उनके आगे है।